देवी प्रसाद मिश्र

वह कोई एक दिन तो जरूर था

तीन कविताओं का यह समुच्चय कुछ कोलाज सा
है – समय के चटियल दालानों में काफ़ी अनियोजित –
सी चहलक़दमी। यहां अंततः इस महासमय का एक कैलेंडर बनता है
जिसमें रोज़मर्रा में न्यस्त हिंसा और प्रतिरोध,
प्रतिदिनता और उल्लास, अकेलापन और मदद,
दुरभिमान और लोकतंत्र, नर्क और निर्वाण,
एलियेनेशन और एका, दुविधा और इलहाम की
कथाएं बनने लगती हैं। पुराकथाएं। फेबल। इस
तरह शिल्प वस्तु का विस्तार कर देता है। यह
इलहाम की तरह था कि अतिसमकालीनता के
विलयन के लिये फ़ेबल या कि पुराकथा का संस्पर्श
मददगार साबित हो सकता है। यह भी लगा कि यह
संस्पर्श ठस वस्तुवाद से मुक्ति का बुरा विकल्प नहीं
है। इस पूरे की काव्य यत्न में एक बेदख़ल फक्कड़
गायक याकि क़व्वाल– चाहें तो उसे स्ट्रीट सिंगर कह
लें – की आवाज़ें जब–तब सुनाई दे जाएंगी। एक
प्राधिकारवादी और पतनशील प्रजातंत्र में ये सब
मिलकर संकट और प्रतिकार का पालिवोकलिक
स्पेस बनाने की कोशिश करते हैं। यह कविता का
फेबल है। यह कविता की दैनंदिनता है। और, उसकी
निरलंकृति भी। यह समकालीनता से एलियनेशन
और उसकी पुनर्पहचान का द्वैताद्वैत है। यहाँ शीर्षक
खोजने की कारोबारी तबीयत के लिए कम जगह
बचती है – जैसा कि बुद्ध ने कहा था एक के बाद
दूसरी लहर आती है। और, मौलिक होने का दबाव
निःशेष हो उठता है। पिछले चार पांच सालों में इस

काव्य समुच्चय पर काम करते हुए जिन पांच वाक्यों ने बड़ी ताक़त दी, उनका ज़िक्र कर देना चाहता हूं –

No poem is intended for the reader, no picture for the beholder, no symphony for the listener.

Walter Benjamin

It is not the question of directing someone but of directing oneself.

Robert Bresson

It is in the impossible that originality is expressed.

Jean Cocteau

Poetry is a scandalous act.

Jean Cocteau

The artistic art is an act of resistance against something.

Godard

देवीप्रसाद मिश्र

वह कोई एक दिन तो ज़रूर था

शुक्रवार

शुक्रवार की सुबह मैंने टिकट घर की खिड़की में हाथ डालकर कहा कि एक टिकट दे दो। क्लर्क ने पूछा कि कहां तक का टिकट चाहिये तो मैंने कहा – बंबई तक का दे दो। लेकिन फिर मैंने सोचा कि अगर मैं बंबई न भी जाऊं तो क्या। मैंने अपना

हाथ खिड़की से बाहर निकाल लिया और सोचा कि अगर मैं बंबई नहीं जा रहा तो मुझे और कहां जाना चाहिये। शायद प्रतापगढ़ या कि रीवा। लेकिन इन दोनों जगहों पर भी जाने को टाला जा सकता है लेकिन शायद ग्वालियर जाने को न टाला जा सके । तो मैं ग्वालियर का टिकट लेने के लिये लाइन में लग गया। लाइन में लगने के बाद मुझे ग्वालियर जाने की निरर्थकता का एहसास होने लगा। कुछ देर में मुझे कहीं भी आने जाने की निरर्थकता का पता लगने लगा। इसमें घर से निकलकर दफ्तर के लिये निकलने का जाना भी शामिल होता रहा जो हरनामगंज में था और जिसके लिये मैं दो रुपये का टिकट लिया करता था। ग्वालियर जाने का टिकट दो रुपये का नहीं था लेकिन महंगा होने के बावजूद वहां जाने का एहसास हरनामगंज जाने के एहसास से बहुत अलग नहीं था। यह सब सोचते हुए मेरा टिकट लेने का नंबर आ गया तो बहुत हड़बड़ाकर मेरे मुंह से निकला कि एक मोहम्मद अमीन सिद्दीक़ी तक का टिकट दे दो। क्लर्क मुस्कुराया। तो शुक्रवार को किसी हड़बड़ाहट में ही सही एक आदमी ने किसी शहर का नहीं एक आदमी तक पहुंचने का टिकट मांगा।

शनिवार

मैं आज एक सुर्ख लाल कमीज़ पहनकर निकला हूं - लेकिन मेरा पड़ोसी, दुकान खोलने के लिये जल्दबाज़ी में निकलते लोग, स्कूल जाते लड़के याकि भीख मांगती लड़की भी यह नहीं सोच पा रहे कि मैं एक बड़े बदलाव के लिये निकला हूं। बहरहाल, इस सामाजिक और वैचारिक उजाड़ में भी एक नीले रंग की चोंच और धानी रंग की गर्दन और मिट्टी के रंग के बहुत सारे पंखों वाली चिड़िया मुझे देखकर सीटी बजा रही है। लाल ने उसे विकल कर दिया है। रूपक ने।

इतवार

हो सकता है कि इस इतवार का क़िस्सा हो लेकिन मुझे थाने में किसी और दिन बुलाया गया। अपराध सीधे नहीं बताया गया। लेकिन यह बात धीरे-धीरे साफ़ होने लगी कि मेरे बेटे ने एक कार का शीशा तोड़ दिया था। कार का नाम लांसर क्रूज़ था और मेरे बग़ल बैठा कार का मालिक़ लगभग सियापे की हालत में था कि जैसे उसकी युवा कुतिया की मौत हो गई हो। जुर्माने के तौर पर मुझे दस हज़ार रुपये देने हैं धीरे धीरे यह बात पर्यावरण में उभरने लगी। मेरे बेटे ने अश्वेत अमेरिकी की बदहवासी के साथ कहा कि पापा पूरी सोसायटी की जगह पर ये लोग कब्ज़ा करते जा रहे हैं - हम कहां खेलें। हम बाप बेटे ने कार के मालिक़ को इस तरह से घूरा कि जैसे इज़रायल की तरफ़ फिलिस्तीनी घूरते हैं। कि जैसे फिलिस्तीनी अपनी ग़ाज़ा और जॉर्डन नदी के पश्चिमी किनारे के लिये लड़ते हैं वैसे ही हम बाप बेटे लड़े। मेरे बेटे की गेंद एक बड़े से अनार जैसी है। रंग भी वैसा ही है। लेकिन दारोगा उसे इस तरह से देख रहा था कि जैसे वह हथगोला हो। दारोगा अमेरिका की तरह दिख रहा था - बिचौलिया, सौदेबाज़ और अनात्म।

सोमवार

मैं और मेरा बेटा चे ग्वेवारा को इतिहास के एक उजाड़ से गुज़रते हुए देख रहे हैं। यह हमारा उजाड़ भी है। ग्वेवारा को हम मोटर साइकिल पर एक मंज़िल की तरफ़ बढ़ते दिख रहे हैं जो है और जो नहीं है। मैं और बेटा एक फिल्म देख रहे हैं जो इतिहास और यूटोपिया का एक हिस्सा है। मैं चाहता हूं कि जो मैं दस साल की उम्र में नहीं देख पाया मेरा बेटा वह देख ले। जो मैं जल्दी नहीं समझ सका उसे समझने में वह बहुत देर न लगाये । जो यमन मैं नहीं गा सका उसे मेरा बेटा गाये।

मैं चाहता हूं कि मेरे बेटे की कीर्ति चे ग्वेवारा की तरह हो। हो सकता है कि वह चे की तरह मार भी दिया जाये।

मंगलवार

मुझे सुबह से ही ज़ुकाम है – एकोनाइट ठीक रहेगी। बांया हाथ बीच बीच में सुन्न हो जाया करता है – इसके लिये लाइकोपोडियम लेने लगा हूं। पिछले दिनों बाल गिरने लगे तो साइलीशिया ली – बाल बाकायदा उगने लगे। कब्ज़ के लिये नक्स और सल्फ़र लेता हूं। न तो ज़ुकाम और न ही स्मृति को ठीक करने के लिये एलोपैथी के पास दवाएं हैं लेकिन होम्योपैथी के पास तो हैं। होम्योपैथी के पास गुस्सा आने, मनमानी करने, स्वर को ठीक करने के लिये भी दवाएं हैं। मतलब कि अधिक मानवीय बनने वाली मीठी गोलियां होम्योपैथी में हैं लेकिन लगता तो नहीं कि मंगलवार की इस समकालीनता में कोई अपनी बर्बरता का इलाज करना भी चाहता हो।

बुधवार

मंगलवार को देर तक चली पार्टियों का आख़िरी दौर चल रहा है। एक बिल्डर कह रहा है कि मैं देश बनाना चाहता था लेकिन एक मामूली बिल्डर बनकर रह गया। मिसेज़ गोदरेज ख़ुद को शीशे में देखकर चीखीं कि पूरी रात में क्या मैं सचमुच इतनी ही चुड़ैल लग रही थी। एक युवती याद करने की कोशिश कर रही है कि आधी रात के वक्त क्या हुआ था – कहीं ऐसा तो नहीं ड्रग के नशे में वह सेक्स कर बैठी हो और उस हरामज़ादे डिज़ायनर की औलाद पेट में आ गई हो। डाक्टर राहेजा को दिखाना पड़ेगा। तुरंत। एक पेंटर ने अंततः कहा कि मैं बिक गया हूं। एक बूढ़ा निर्देशक एक अभिनेत्री को अपनी सत्ता दिखा रहा है।

फ़र्श पर शराब, वीर्य, थूक, पसीना, पेशाब, उल्टी और सत्ता के दाग फैले हैं। खिड़कियां खोल दी गई हैं कि तंबाकू और अध:पतन की बदबू निकल जाये। लेकिन फ़र्श से ज़्यादा इतवार का मलबा अगले दिन के अख़बार के पेज तीन पर फैला हुआ है। यहां सब हैं – कलाकार दलाल बिल्डर फिल्मकार डिज़ायनर अभिनेता स्तंभकार राजनीतिज्ञ लेखक प्रशासक। 2007 के आसपास यही लोग देश का निर्माण कर रहे हैं।

सुबह एक आदमी दूसरे आदमी को फोन पर रात के सौदे की याद दिला रहा है – एक देश बेच रहा है दूसरा उसे ख़रीदने को तैयार है।

बृहस्पतिवार

बग़दाद में बम गिरा तो एक आदमी ने अपनी मां खो दी और बीवी और तीन बच्चे और सात बकरियां और दो बेटियां और दो मामू और कुछ और खोने का डर।

शुक्रवार

मॉल के एसकेलेटर पर एक बच्चा इस तरह से आसमान की तरफ़ जाती सीढी पर आसमान में जा रहा है कि जैसे वह किसी अमेरिकी की संतान हो। दिन रात जेटिक्स-निकलोडियन-कार्टूननेटवर्क पर कार्टून देखने वाला बच्चा हवा में हत्याएं कर रहा है। वह पीज़ा की दुकान की तरफ़ दौड़ने लगा – खिलौनों के तौर पर उसने एक बंदूक ख़रीदी, और सबसे हिंसक सरीसृप- टायरैनोसॉरस। और फिर मल्टीप्लेक्स में देखी ब्लेड्स और सपनों में देखा कि हिंदी पढ़ाने के लिये बैठे पिता पर उसने गोली चला दी। सुबह चॉकलेट लेकर वह स्कूल की बस में चढ़ा उत्तर आधुनिकता के निर्माण में अपना योगदान देने। उसकी मां ने बाय कहा जिसको यह जानकारी

नहीं है कि दुनिया में हर चालीस सेकेंड में एक बच्चा भूख से मर जाया करता है। लेकिन यह जानकारी संयुक्त राष्ट्र संघ खाद्य कार्यक्रम के पीटर जोंस को है जो भूखे बच्चों की किसी परियोजना के समन्वयक हैं और भूख के आंकड़ों को इकट्ठा करने के लिये पार्क स्ट्रीट होटल में रुके हैं। उड़ीसा के तमाम गांवों का दौरा करने के बाद वे बहुत थके हैं और इंटरकॉम बजने पर वह कहते हैं ओह मिसेज़ सेनगुप्ता। आम कमरे में ही आ जाइये। भूखे बच्चों पर लगातार बात हो रही है और लगातार फिंगर चिप्स, सलाद, वाइन वगैरह मंगाये जा रहे हैं। इस बीच मिस सेनगुप्ता को अपने एनजीओ के लिए पांच करोड़ पाने का आश्वासन भी मिल गया है। लगातार पीटर अपने लैपटॉप में डाल रहे हैं सेनगुप्ता के लैपटॉप से निकले आंकड़ें। और अचानक पीटर अपनी गोद में - मतलब कि लैपट में - डाल लेते हैं मिसेज सेनगुप्ता को और टॉप पर लाते हुए नशे में कहते हैं उड यूं माइंस सेक्स, मिसेज़ सेनगुप्टा। दैट नोटोरियस वन नाइट स्टैंड। धूप जैसी सफ़ेद त्वचा की गर्मी महसूस करती मिसेज़ सेनगुप्ता सांसें छोड़ते हुए तालाब में डूबते हुई सी कहती हैं - इफ़ यू हैव द राइट रबर, पीटर। फच्च फच्च। फिर हा हा। अगर आइज़ेंस्टीन की मोंताज शैली में कहना हो तो कहना होगा कि ठीक इसी समय एक बच्चा भूख से होटल और जंगल के बीच में कहीं सो नहीं पा रहा है। लेकिन दुनिया में इस तरह के कितने ही होटल हैं और कितने ही जंगल हैं और उनके बीच में कई करोड़ बच्चों की नींद भूख से टूटती है। पीटर के लैपटॉप में ये आंकड़ें हैं भी लेकिन ये जानकारी शायद नहीं है कि ये बच्चे जब भूख से जाग जाते हैं तो उनमें से कई दंडकारण्य की तरफ़ चल पड़ते हैं।

शनिवार

जो आदमी मेरी बग़ल में बैठा था उसकी भौंह के

ऊपर चोट का निशान था। घाव ज्यादा पुराना नहीं था। निचले होंठ पर भी चोट का निशान था। मुझे लगा कि मैं जानना चाहता हूं कि कि होंठ का घाव किस तरह लगा था। मौक़ा मिला तो यह भी पूछूंगा कि भौंह की चोट कैसे लगी। इस बीच उसे खांसी आयी तो यह लगा कि ये आदमी ज़रूर कभी कभी पी पा लेता है और हो सकता है कि ये चोट उसे गिर कर लगी हो। लेकिन यह भी तो हो सकता था कि ऐसा न हुआ हो। इस बीच उसने निगाह उठा कर मेरी तरफ़ देखा। हो सकता है कि वह मुझे वैसे ही देख रहा था जैसे मैं उसे देखता रहा था। हो सकता है कि वह भी मेरी चोट के किसी निशान के बारे में मुझसे पूछना चाहता था।

इतवार

कुछ लोगों की छुट्टी थी लेकिन ज्यादातर लोगों की छुट्टी नहीं थी – मसलन किसानों और बेरोज़गारों की। बाज़ार बंद थे तो जो आदमी बाज़ार में बहुत सारे लोगों को मारना चाहता था वह बम को वापस ले आया। अब वह बम को बुधवार को ओडियन सिनेमा में रखेगा – लाहौर का एक और आदमी इस बात को जानता है लेकिन जिसे खिचड़ीपुर की एक लड़की नहीं जानती और जिसने बुधवार की ओडियन की कोने की दो टिकटें बुक करा रखी हैं। यह एक भोले से प्रेमी के साथ मरने की एडवांस बुकिंग है। उसका मरना लगभग उस सीन के समय होगा कि जब फिल्म में नायिका गाना गाने के लिये मुंह खोलेगी। एक लड़की के गाना शुरू करते ही दूसरी लड़की मार दी जायेगी। यह काफ़ी पेंचीदा समय है – बर्बरता और कम बर्बरता के बीच विभाजित– कि जो आदमी नरेंद्र मोदी से बदला लेना चाहता है वह खिचड़ीपुर की एक लड़की को मार देना चाहता है।

सोमवार

सोमवार के रोज़ बग़दाद के पास के एक गांव में एक स्त्री अपने बच्चे को एक ढूह में ढूंढ रही थी। फिर उसने बच्चे को धुएँ में खोजना शुरू किया। फिर शहर में। पूरे शहर में वह नहीं मिला तो उसने दूसरे शहर में पूरे शहर में उसे ढूंढ़ा। बच्चे को ढूंढते हुए वह एक दिन किसी सोमवार को अमेरिका पहुंच गई। अमेरिका में अपने अपने बच्चों की खोज में निकली पता नहीं कितनी मांएं पहले से ही मौजूद थीं - वे स्याह मांएं बरसों में शफ्फाफ-सफ़ेद व्हाइट हाउस को घेरे थीं।

मंगलवार

पूरे शहर में युद्ध से भयावह तबाही हुई थी। छतें गिर गई थीं और दीवारें ढह गई थीं। दूध में बारूद मिला था। मुर्ग़ियों के पंख जल गये और संगीत वाद्य रबाब की लकड़ी। कुछ गायकों के तो सीधे गले पर ही बम गिरे कि जैसे हमलावरों को पता था कि वे किसी गायक पर हमला कर रहे हैं। इसी तरह कारीगरों के हाथों पर बम गिरे। चित्रकारों के रंगों को हर तरफ़ फैली कालिख ने लील लिया। लोग एक दूसरे से अस्पताल में मिलते।

बहुत धुआं था। आय - स्पाय खेलते बच्चे छिपने के लिये धुंएं के पीछे छिप जाते थे।

बुधवार

आज के दिन यानी किसी बुधवार को मेरा चेक लैप्स हो गया। बिना भुनाये। मन उदास तो है लेकिन उन पैसों का भी क्या जो हाथ में आये और जिन्हें मैंने खर्च भी किया। उन पैसों के लिये कितना तो अपमान सहना पड़ा और कितना पसीना बहाना पड़ा और पता नहीं क्या क्या करना पड़ा

और कहां कहां जाना पड़ा। कुछ पैसों की ख़ातिर ज्ञान को मुल्तवी किया और क़ैद को संस्कृति मानने पर सवाल नहीं उठाया और शहरों में आ गया। किसी आज को मेरा चेक लैप्स हो गया है – मन उदास है और शरीर शिथिल। मेरी व्यवस्था का चेक लैप्स हो गया – यह कहते हुए प्रधानमंत्री पूरी काबीना के साथ संसद के बाहर आ रहे हैं – यह सपना मैं बस में नींद में देखता हूं और बस से उतरकर बैंक ऑफ़ इंडिया की इमारत में दाख़िल होता हूं और लैप्स चेक को वैध कराने के लिये प्रबंधक के नाम एक चिट्ठी लिखता हूं।

बृहस्पतिवार

दोपहर को बहुत सारा सार बहा – बहुत सारा वीर्य। कि जैसे एक नीमरौशन कमरे में धूप फैल गई हो। कि जैसे कविता लिखने के लिये संजोई किसी पुरानी इच्छा की दावात उलट गई हो। बहुत सारा अनियोजित आनंद फ़र्श पर फैला रहा। और उतनी ही थकावट का तुड़ामुड़ापन। सुख नम था लेकिन मूर्त नहीं था। कि जैसे वह अनागत के लिये बहाया गया पसीना हो। वे खजुराहो नहीं पूर्वी दिल्ली की दो मूर्तियां थीं जिनके इतिहास थे, संलाप थे, विकलताएं थीं, टूट-फूट थी और पेंचीदा समकालीनताएं थीं जो बृहस्पतिवार जैसे किसी दिन फ़र्श पर फैल जाया करती थीं। महानगर के ऊबड़ खाबड़ पठार पर यह कला का तीसरा क्षण था।

शुक्रवार

वह थोड़ी सी गुरुवार की रात थी लेकिन उससे ज्यादा शुक्रवार की जब मैं शराबघर से लौट रहा था – शहर में सन्नाटा था। लग रहा था कि शहर में इमारतें और मैदान और पुल और थियेटर और किताबों की दुकानें और कला वीथियां और झूले और पेड़ और कहवाघर बचे हैं लेकिन लोग नहीं बचे हैं।

बहुत नशे में भी मुझे इस बात की कोई ख़ुशी नहीं थी कि उस सबका भोक्ता अकेला मैं हूं।

शनिवार

मैं भी क्यों इस तरह लिखना चाहूं। मैं भी क्यों उस तरह कहना चाहूं। तू मुझे देखकर अफ़सोस कर रहा होगा। मैं तुझे देखकर वल्लाह न कहना चाहूं।

मैं तेरे ज़िक्र का मोहताज़ न होता आया। मैं तेरा वक्त तेरी उम्र न जीना चाहूं। मुझको ईनाम नहीं क्योंकि मेरा नाम नहीं। मैं तवारीख़ की सरहद पे ही मरना चाहूं।

मैं जो हिंदी में ही हिंदी में लिखा करता था। मैं वो हिंदी में ही उर्दू में ही कहना चाहूं। ये मेरा रास्ता है और मेरा वास्ता है। तू मुझे रोकता है क्यों जो मैं सहना चाहूं।

मैं जो दरिया हुआ तो और भी क्या हो पाता। तू मुझे रास्ता क्या दे जो मैं बहना चाहूं। तू मुझे हद में रखेगा तो तेरी हद होगी। तू मुझे दे जो क़लम तो मैं क्या लिखना चाहूं।

मेरा शनिवार मेरे काम बहुत आने लगा। किसी इतवार तक मरदूद न रुकना चाहूं।

इतवार

आज मौसम अच्छा है। लेकिन आज भी विपत्ति से बचा नहीं जा सकता। भारत में खुशनुमा मौसम में भी मृत्यु भारतीय राज्य की तरह कोई मुरव्वत नहीं दिखाती। तो इतवार को आज जबकि वसंत है वसई में एक मज़दूर समय से पांच मिनट पहले काम पर पहुंचने की फिक्र में पटरी से कट जाता है, सोलापुर में एक किसान कीड़े मारने वाली दवा

खाकर आत्महत्या कर लेता है और इलाहाबाद में एक बच्चा व्हाइटनर पीकर अपने को खत्म करना जारी रखता है। और तो और वित्तमंत्री की जान ले लेता है एक स्त्री का शाप जो बेचारा अगले लाभ वाले बजट की तैयारी में लगने वाला था।

सोमवार

दरअसल यह बात तो सोमवार को ही नहीं किसी भी दिन पता लग सकती है कि ईश्वर बहुत कम जानता है क्योंकि अगर वह काफ़ी जानता है तो यह बताये कि इराक़ में कुल कितने बच्चे गोलियों से मारे गये और भारत में डायरिया से। जान यह पड़ता है कि ईश्वर अवध विश्वविद्यालय के एक लद्धड़ छात्र से भी कम जानता है। वो क्या जाने की जंगल में एक बेर के पेड़ की बग़ल में दो आदिवासियों के बीच क्या बात हो रही है। ईश्वर से ज्यादा तो प्रधानमंत्री ही जानते हैं जो बच्चों से भी बहुत प्रेम करते हैं - लेकिन थोड़ा संभालकर। मसलन उन्होंने उन बच्चियों के साथ कभी फोटो नहीं खिंचवाई जो सात साल की उम्र से ही सेक्स वर्कर बन जाती हैं। देश की बच्चियों से प्रेम करते हुए कोई भी प्रधानमंत्री इस तरह की बातों को न जानने वाले चेहरे के साथ फोटो वगैरह खिंचवाता है और अचकनें भी इस तरह की बनवाता है कि जैसे वह गले तक नहीं चेहरे को छिपाने तक बटन लगाता चला जायेगा।

मंगलवार

एक आदमी ने यह महसूस किया कि मृत्यु उसके आसपास ही रहा करती है - वह उससे तीन चार मीटर ज्यादा दूरी पर नहीं होगी। लेकिन किसी और दिन उसने यह भी महसूस किया कि करीब इतनी ही दूरी पर उसकी बेटी उसके आसपास रहा करती है। और पत्नी भी। उसे पसंद आने वाली किताबों की दूरी भी औसतन इतनी ही होगी। यह

सब भी उसे लगा।

बुधवार

मंगलवार की तरह ही बुधवार को भी एक स्त्री मंगलवार की तरह ही स्टेशन पर जाकर भीख मांगा करती है। उसे और कोई काम नहीं मिल पाया- उसे कोई साथी भी नहीं मिल पाया अलबत्ता तीन चार बच्चे शरीर से निकलकर उसे मां मां कहने लगे। इस तरह उसने कुछ बंदों को तो खड़ा किया ही भारतीय राज्य को डंडा करते रहने के लिये। भीख मांगना ग़ैरक़ानूनी है लेकिन वह भारतीय राज्य के क़ानून तोड़ती रहती है गांधी जी की तरह जिन्होंने क़ानून तोड़कर अपना नमक बनाया था। वह भीख मांगती है, क़ानून तोड़ती है और अपना नमक बनाती है। उसका स्वतंत्रता संग्राम सुबह छह बजे से शुरू हो जाता है।

बृहस्पतिवार

पता नहीं वह बुधवार था या बृहस्पतिवार जब यह पता लगा कि मुकेश अंबानी के पास एक लाख करोड़ की संपत्ति है, जबकि यह तो पहले से ही पता रहा है कि जिनके पास कुछ नहीं है वे करोड़ों हैं। इसी के आसपास यह भी पता लगा कि दुनिया में सबसे बड़ी तादाद में बच्चे भारत में मज़दूरी करते हैं। ये रिपोर्टें हैं और किसी आदर्श कविता की इबारतें ये नहीं हैं। मुझे काफ़ी हद तक यह भी मालूम है कि एक आदर्श कविता की संरचना में क्या क्या होना चाहिये। कि जैसे भारतीय राजनीतिज्ञों को अमूमन यह पता ही होगा कि एक अच्छे राष्ट्र की संरचना के क्या क्या घटक होते हैं।

वे एक
आदर्श राष्ट्र
नहीं बना
पा रहे

और मैं
एक आदर्श
कविता।

कि जैसे और दिनों न होता हो गणतंत्र

31 दिसंबर के क़रीब बारह बजे

हो सकता है कि यह व्यवस्था का आख़िरी महीना हो। कि अमर सिंह ने आख़िरी बार शरीर, संपत्ति और सत्ता की दलाली की हो। कि आख़िरी बार दाऊद ने अपनी गोली चलाई हो। कि आख़िरी बार बजट पेश किया हो चिदंबरम् ने। कि बुश ने आख़िरी बार हिलाया हो हाथ। कि आख़िरी बार लगाया हो किसी तस्कर ने किसी फिल्म में पैसा। कि शाहरुख़ ख़ान आख़िरी बार नाच रहा हो - 31 दिसंबर को रात बारह के आसपास।

हो सकता है कि 31 दिसंबर की आधी रात को यह ख़बर आये कि व्यवस्था बदल गई लेकिन यह भी हो सकता है यह संदेश रिलायंस के फोन पर आये या कि टाटा के फोन पर।

26 जनवरी 1950 से 26 जनवरी 2005 के बीच के कुछ दिन और कुछ रातें

कितना गणतंत्र है
जितना गणतंत्र है

जनवरी में किसी दिन गणतंत्र दिवस होता है कि जैसे और दिनों देश गणतंत्र न होता हो कि जैसे और दिनों में संविधान कमोबेश स्थगित रहता हो कि जैसे और दिनों में तरह-तरह की अधीनताओं में ही रहना होता हो। कि जैसे और किसी महीने में गांधी को मारा नहीं जा सकता था।

25 जनवरी की ठंड में प्रेम को स्थगित नहीं किया जा सकता बिना यह कहे हुए एक स्त्री अपने सारे कपड़े उतार देती है।

18 जनवरी को हरे रंग की बेंच काफ़्का की तरह अकेली पड़ गयी थी। हिंदी कवि की तरह वह भी संस्कृति का कोना और उजाड़ है। भूखी-प्यासी सेक्स वर्कर की तरह वह सभ्यता के कोने में बैठी थी। कि कोई उसको ढंक ले कि जैसे ठंडे होते अंडों पर एक चिड़िया आहिस्ता से उतरती है और एक कम जिंदा आदमी को एक ज्यादा जिंदा आदमी जिंदा कर देता है।

17 जनवरी की सर्दी में ठंड की वजह से अकड़ी उंगली ने एक कवि की तीन कविताएं कंप्यूटर से उड़ा दीं। यह कुछ ऐसे था कि किसी आदमी की तीन प्रेमिकाओं ने शहर को एक साथ छोड़ दिया हो।

तीन चार स्वेटर पहने लड़की प्रेमी की बाहों में नहीं आ पा रही। अंततः प्रेमिका ने ही प्रेमी को हवा में उठा लिया।

2 जनवरी को ज्यादातर हाथ ठंडे थे प्रधानमंत्री के फैसलों की तरह।

गठिया के जानलेवा दर्द से कराहती स्त्री अंग्रेज़ी दवाओं को कोसती रहती है - उसके शाप से मुनाफ़ाखोरों का बच पाना मुश्किल ही है।

11 जनवरी की नीरवता में एक कवि ने एक ऐसी कविता लिखी है जिसमें बहुत सारे लोग हैं, बहुत सारा विरोध है और आवाज़ें भी कम नहीं हैं। एकांत का यह क्रांतिकारी उपयोग है। 10 जनवरी को रेलगाड़ी की ऊपरी बर्थ पर एक आदमी जिस कंबल में दुबका है वह कंबल विचारधारा की तरह

चिथड़ा हो रहा है।

19 मार्च

19 मार्च को एक अमेरिका एक इराक पर हमला करने वाला है। 19 मार्च को एक भारत में एक अमेरिका कपास के निबीजे बीज उतारने वाला है। 19 मार्च की रात को काल सेंटर की एक 19 साल की लड़की किसी बदमिज़ाज बूढ़ी अमेरिकी औरत की फ़क यू फ़क यू फ़क यू सुनने वाली है। 19 मार्च को एक मॉल तैयार हो गया है और तीस छोटे दुकानदार विरोध की रणनीति बनाते हुए यह जानने की कोशिश कर रहे हैं कि गांधी जी ने सत्याग्रह से अंग्रेज़ों को पछाड़ा था या ख़ुद को। 19 मार्च के 12 दिन पहले महादेवी वर्मा का जन्म होने वाला है और एक किसान आत्महत्या करने वाला है और होली आने वाली है और कहीं आग लगने वाली है और कहीं गोली चलने वाली है। अधिकांश लोग फागुन के कुख्यात प्रेम में लग गये हैं और जो थोड़े से बचे हैं वे यह कहते हुए बेचैन होकर घूम रहे हैं कि इस व्यवस्था को उलट देना है। यानी कि जिस व्यवस्था में ससुरी कोई व्यवस्था नहीं है उसे। व्यवस्था को उलट देने के लिये बेचैन अपनी और दूसरों की नींद हराम करते रहते हैं बिना खाये पिये, बिना नहाये धोये, बिना बाल दाढ़ी बनाये। जब वे पान-बीड़ी की दुकान में अपने चेहरे को शीशे में देखते हैं तो उन्हें अपने कालर में पतझड़ का पीला पत्ता और लैंप पोस्ट की पीली रौशनी अटके मिलते हैं। व्यवस्था के बारे में समझदारी विकसित करते हुए ही कुछ बदहवास हो जाते हैं, कुछ सत्तर अस्सी कविताएं लिख डालते हैं, कुछ दैनिक जागरण में नौकरी कर लेते हैं, और कुछ विलीन हो जाते हैं झारखंड या छत्तीसगढ़ के बियाबान में। उधर कमबख्त व्यवस्था किसी कमअक्ल और अधनंगी अभिनेत्री की तरह सात गानों वाली फिल्म में काम करते हुए टॉप पर बनी रहती है। मार्च में। और

मार्च के न रहने पर भी।

मई 1974, मई 1975, मई 1976, मई 1977...

मई में गर्मी की छुट्टियों में मैं फिल्में देखना शुरू कर देता तो ढांय जैसे किसी भीषण संगीत के साथ शुरू होतीं तो दिल ज़ोर ज़ोर से धड़कने लगता। फिल्मों में कितना ही संगीत था कितना ही प्रेम और अंततः सुख ही सुख। 6-7 गानों वाली फिल्में देखकर मैं लौट रहा होता तो शहर उजड़ा हुआ लगता - मैं लाल-नीले सलवार और दो दो चोटियों वाली लड़कियों की तरफ़ देखता तो वे दूसरी तरफ़ देखने लगतीं जबकि पूरी फिल्म प्रेम से बज बज करती रही थी- पूरे शहर में लड़की के लड़के का हाथ पकड़ने का यथार्थ नहीं था। प्यार का अतियथार्थवाद फिल्म हालों की चार दीवारी में क़ैद था और हाल के बाहर समाज ही समाज था जिसके नियमों के टूटे फूटे ट्रक पता नहीं किस किस तरह के हॉर्न बजाते हुए सीटी बजाते प्रेमियों के ऊपर से गुज़र जाया कते थे। कभी भी चले आइये क़स्बे की गलियों में कितनी ही कराहें और ख़ून और वीर्य फैला होता था। इस सारे रक्तपात के बावजूद अमूमन खिड़कियां खुली होती थीं और लगभग हर घर में बहुत अधमरा ही सही संगीत बज रहा होता था।

20 नवंबर का कोई सन्...

मुझे इसलिये याद रहेगा कि ऐसी किसी तारीख में मुझसे पौने चार साल बड़ी लड़की ने कहा कि वह मुझसे इसलिये प्रेम करती थी क्योंकि मेरी शक्ल उसके एक पुराने प्रेमी से मिला करती थी। उस दिन उसने शिफॉन की पीली साड़ी पहनी थी और उसके होंठ सूखे थे और उसके बाल ज़्यादा उलझे थे और वह इतना रो चुकी थी कि उसने हंसना शुरू कर दिया था। उस दिन मेरी मोहब्बत पास के

तालाब में डूब गयी। मैं पुरानी साइकिल को खड़खड़ाते हुए मोतीमहल पहुंचा, लड़खड़ाते हुए ब्लैक में टिकट लिया, प्रेमिका को डायन-चुड़ैल-दग़ाबाज़-फेरवा कहते हुए दुश्मन देखी, सिगरेट ख़रीदी और चूहे की तरह मर जाने के लिये ज़हर ख़रीदा। मैं बच गया क्योंकि मैं मरा नहीं। मेरा ख़याल है कि इस बात पर इतना उखड़ने की ज़रूत नहीं थी कि मेरी शक्ल प्रेमिका के किसी पुराने प्रेमी से मिलती थी। क्योंकि एक प्रेमी की शक्ल दूसरे प्रेमी से मिलती ही है। और एक अधिनायक की शक्ल दूसरे अधिनायक से। और एक व्यापारी दूसरे व्यापारी से मिलता है। दुनिया के तमाम ईश्वरों के चेहरे एक दूसरे से मिलते ही हैं अपना सपाटताओं में। हो सकता है कि सालों बाद मेरी वह प्रेमिका मुझसे मिले तो कहे कि तुम्हारे बाद जो तीन चार प्रेमी मिले उनकी शक्लें तुमसे मिलती थीं।

एलियट की एप्रिल से भी ज्यादा क्रूर अप्रैल

न्याय न पाने की उमस अप्रैल में बढ़ गई है। एक पतला सा बंगाली सड़क के बीच में खड़ा होकर कह रहा है कि इन सबको गोली मार देनी चाहिये। यह बात अवध की एक स्त्री भी कहना चाहती है लेकिन इसके पहले ही उसे ख़ून की एक उल्टी होती है।

अप्रैल बेहद क्रूर है- इस बात को अंग्रेज़ी के एक बड़े कवि ने भी कहा। सोचिये कि हिंदी के कवि के लिये वह कितना क्रूर होगी। लेकिन मई तो और क्रूर है। और सितंबर उससे भी ज्यादा क्रूर है। ऐसी ही कोई स्मृति जून की है। गोया किसी भी महीने की क्रूरता रामदास और रघुवीर सहाय की हत्या के लिये काफ़ी है।

सबसे बड़ा दिन

25 जून के सबसे बड़े दिन को देश के सबसे छोटे

लोग गर्मी से बहुत बेचैन हैं। इसलिये भी कि अमेरिका ने अफ़ग़ानिस्तान, इराक़ और ओज़ोन के सीनों में गहरे छेद कर दिये हैं। एसी के विज्ञापन बढ़ रहे हैं। कॉरपोरेट का टर्न ओवर बढ़ रहा है – निरी अभिधा में अमीर-ग़रीब के बीच फ़र्क़ बढ़ रहा हैऔर लक्षणा में दिल्ली और उज्जैन के बीच। सीपीएम और एमएल के बीच का फासला व्यंजना बनता जा रहा है। बढ़ा हुआ फासला बढ़ता हुआ दिख रहा है। उज्जैन और प्रतापगढ़ के बीच। प्रतापगढ़ और पांड़ेपुर के बीच। पांड़ेपुर और चमरौटी के बीच। फासला बढ़ रहा है। मॉल और बज़ार के बीच। बाज़ार और हाट के बीच। हाट और कोने में तीन करेले लेकर बैठी बाई के बीच। बाई के भीतर की बाई का बाहर की बाई से। फ़ासला बढ़ रहा है। बड़े और छोटे मकान के बीच का फासला। बढ़ रहा है। फ़ासला। दाहिने और बाएं हाथों के बीच का। बाएं और और बाएं के बीच का। फ़ासला। चोम्स्की और हटिंगटन के बीच का। संतोष और असंतोष के बीच का। असंतोष। बढ़ रहा है।

15 अगस्त के आसपास का अगस्त

15 अगस्त के आसपास के अगस्त की अहमियत यह नहीं है कि इस दिन के आसपास देश आज़ाद जैसी कोई चीज़ हुआ बल्कि यह कि मैं पैदा हुआ। और बातों के अलावा मेरे पास हिंदी साहित्य की नाक में दम करने का कार्यभार भी था। तमाम लामबंदियों के खिलाफ मेरे पास एक गुलेल थी और नदियों की तरह शहरों और शिल्पों और वस्तुओं को छोड़ देने का वानप्रस्थ। मेरे पास शाप थे और तिब्बत से सिद्धों की पांडुलिपियां खच्चरों पर लेकर लौटते राहुल की तरह कई खच्चर कविताएं और करीब उतने ही प्रेम पत्र। मेरे पास बहुत आदिम क्रोध था और सत्तावानों को घूर कर देखने का हुनर। मेरे पास यातनाएं थीं और खुशी में मनहूस हो जाने का प्रतिकार। सलाहों और सत्ताओं का मुझ

पर कम असर था – मैं पेंचीदा था – अपनी ही चाबी से खुलने वाला ताला। मणिकर्णिका की तरह मैं लगातार सुलगता रहता था।

7 जुलाई

स्कूल खुल रहे हैं और बादल-नीले अंतर्देशीयों की तरह। दक्षिण पश्चिम मानसून ने मार्क्सवाद की सफ़ेद स्याह दाढ़ी की तरह शहर में प्रवेश शुरू कर दिया है – कि जैसे वे अंतोनिअनी की फिल्मों का काला हों याकि ऋत्विक घटक का पोर्ट्रेट या कि मेरी अपनी ही कविताओं का फोटोस्टेट या कि मुक्तिबोध की बीड़ी का धुआं। जो भूमिहीन हैं वे भीग रहे हैं किसी और की भूमि में। बादल अवध की लड़कियों की सांसहीनताएं हैं। वे समूह की कानाफूसी हैं। वे शरच्चंद्र की बदहवासी हैं। वे आत्महत्या करने वाले किसानों की आसमान से लटकी रस्सियां हैं। वे एक साहित्यिक की डायरी की धूसर बौद्धिकता की उमड़ घुमड़ हैं। वे अरण्येर दिन रात्रि के दिन रात हैं। हिंदी प्रदेश में वे दक्कनी उर्दू हैं। वे सड़क पर दौड़ते पागल हैं। शोर मचाते हुए वे शास्त्री भवन पर घुमड़ रहे हैं नारे लगाते हुए कि ऐसी संस्कृति नहीं चाहिये, नहीं चाहिये। डाउन डाउन डाउन की आवाज़ें गूंज रही हैं पूरे शहर में। वहां से आगे बढ़ने के बाद उन्होंने भाजपा के कार्यालय पर पूरी बिजली गिरा दी। यक्ष का कोई भी संदेश लेने से उन्होंने इंकार कर दिया और कालिदास की गीतात्मकता को अप्रासंगिक बना दिया।

हिन्दी साहित्य के बाहर की फरवरी

फ़तहाबाद में हवाओं से भी पतली फरवरी की फर फर में फूल खिलते हैं। दरवाज़े खुलते हैं कि जैसे अजनबियों के लिये क़स्बे खुलते हैं। दिल्ली और बंबई के रास्ते में जो स्टेशन झक्क से गुज़र जाया

करता है वहां भी लोग रहते हैं जहां फरवरी पर विनोद खन्ना की तरह लंबे खत रखने वाले, ज़ोर ज़ोर से हंसने वाले और पान खाकर हांव हांव करने वाले कवि कविताएं लिखते हैं – यह जानते हुए कि उनकी कविताओं को हिंदी साहित्य में शामिल नहीं किया जायेगा। वे हिंदी साहित्य की मनहूस और बियाबान अमरता पर विहंसते हैं अपने आनंद की समकालीनता में। सीटी बजाने के बाद एक लड़के ने गाना शुरू कर दिया लेकिन लड़की ने बालकनी में न आने का फैसला किया – उसे लैला नहीं टाइपिस्ट बनना है। फरवरी की फर फर में कितनी ही लड़कियों की मर मर शामिल है। मांएं और ज़ोर से लड़कियों को अरी और मरी पुकार रही हैं। फरवरी से विकल लड़की मकान मालिक के डर से बागेश्री को भी धीमी आवाज़ में गा रही है। और डायरी में छिपाकर लिख रही है फरवरी पर एक कविता कि तू मुझे मिलता रहे जब फ़रवरी। मैं सयानी न दिखूं जब फ़रवरी। कह दिया आना जब आये फ़रवरी। और क्या कहती जो कहती फ़रवरी। बैंगनीपन सुर्ख़ स्याही फ़रवरी। ख़ून के थक्के उजड़ती फ़रवरी।

25 अक्टूबर, 2017 के आसपास

अजीब सी बेचैनी हो रही है। मनुष्यता की नमी सी फैली है। लगता है किसी पत्ते की नोंक आ चुभेगी। हवा कलात्मक और पक्षी समूहों में निकल रहे हैं । चीज़ों में बदलने की आतुरता का मंद्र स्वर सुनाई दे रहा है। अंदर एक उत्पात हो रहा है कि लिख दिया जाये एक उपन्यास अक्टूबर के बीतने के पहले । कि अक्टूबर को न बीतने दिया जाय। खिड़कियों के पास बैठने का मन होता है और देखती आंख से आंख न हटाने का। इस शारदीयता में दिखना है फटा पुराना ओवरकोट पहने एक आदमी। मैं उसके पीछे चलने लगता हूं। सड़क से होते हुए वह एक बस में सवार हो जाता है। फिर वह रेलगाड़ी में

खिड़की के पास बैठा दिखता है। उसके पीछे पीछे मैं छत्तीसगढ़ पहुंच जाता हूं और फिर मुंबई की चालों में होता हुआ वह ग़ायब हो जाता है। पैबंद वाला ओवरकोट पहने वह आदमी हो सकता है लेनिन हो जो दुनिया में 100 सालों बाद साम्यवाद का जायज़ा लेने निकला हो। हो सकता है कि वह है यह याद दिलाने के लिये वह दिखा हो। दरअसल क्रांति के लिये अक्टूबर से बेहतर मौसम नहीं। रूस में क्रांति के पहले भी यही कहा जाता रहा होगा कि अक्टूबर में ही होनी चाहिये क्रांति और हिंदुस्तान में क्रांति के बाद कहा जायेगा कि देखो हिंदुस्तान में व्यवस्था अक्टूबर में बदली क्योंकि अक्टूबर में ही हो सकती है क्रांति। क्योंकि सिर्फ केलि के लिये ही नहीं है अक्टूबर की आत्मीयता।

मैंने एक आदमी से पूछा कि कितने बजे हैं तो उसने कुछ बताया तो था

एक बजे

मैंने स्टेशन की बड़ी सी घड़ी को देखने के बाद और फिर जैसे यही पुष्ट करने के लिये कि एक ही तो बजा है मैंने एक आदमी से पूछा कि कितने बजे हैं।

दो बजे

क़रीब सवा दो का वक्त रहा होगा जब एक पत्रकार मित्र ने बताया कि दूरदर्शन सुधर गया है क्योंकि वहां के महानिदेशक ने बिना घूस लिये उनकी एक टेली फिल्म को पास कर दिया है। मेरे मित्र शायद इस बात को जानने की कोशिश नहीं कर रहे थे कि उनकी फिल्म इसलिये पास हुई क्योंकि वह एक दबदबे वाले पत्रकार थे। और उनकी फिल्म पास करके उनकी सच कहने की आक्रामकता को नष्ट कर दिया गया था। किसी के पास सरकार होने की

ताकत है और किसी के पास पत्रकार होने की। इस समाज में एक ताक़तवर दूसरे ताक़तवर की मदद कर रहा है। और एक भ्रष्ट दूसरे को भ्रष्ट करने का उपाय ढूंढ़ रहा है। बाक़ी जो बचता है वह नैतिकता के प्रदर्शन की कुछ आख़िरी सी दुविधाएं होती हैं।

तीन बजे

जो भी खिड़की से देखेगा तीन बजे, उस पर गोली चल जायेगी तीन बजे।

चार बजे

तू मेरा साथ दे या साथ न दे चार बजे। मैं किसी फ़िक्र में फ़नकार हुआ चार बजे। मैं कहूं और कहूं और भी कहता जाऊं। आख़िरी दोस्त से तक़रार हुई चार बजे। मैं जो होता हुआ आया तो ख़ुदा खो आया। मैं जो बहका हुआ ख़ुद्दार हुआ चार बजे। मेरा अफ़सोस मेरे काम बहुत आने लगा। मैं जहां भी था वहां क्यों नहीं था चार बजे। मीर को दोस्त किया जो मैं अकेला न हुआ। मैंने ईनाम को इंकार किया चार बजे।

पांच बजे

उस रोज़ पानी बरस रहा था और दोस्त का आभास देते एक आदमी ने मुझे लिफ्ट दे रखी थी। हो सकता है कि इस आदमी को आपने भी टीवी पर देखा हो जो बहुत बर्बर तरीक़े से अचानक मानवीय हो जाया करता है। उसने मुझे जिस तरह से अपनी कार में बैठाया था लगभग उसी तरह से कार से उतार देने के पहले कहा कि नीचे कोई होता है क्योंकि ऊपर कोई होता ही है। वह अगस्त का महीना था जब पंद्रह अगस्त को स्वतंत्रता दिवस होता है और ठीक दिन बाद मेरा जन्म दिन। वह आदमी बोले जा रहा था 1947 के पहले के

अंग्रेज़ की तरह और मैं सुने जा रहा था गुजरात दंगों के बाद के मुसलमान की तरह।

सात बजे

सात बजकर सात मिनट पर कविता पाठ शुरू हुआ। एक के बाद दूसरा कवि। जिस भाषा के बारे में कहा जा रहा था कि इसमें विचार नहीं हैं और वह मरने वाली है उसमें कितनी ही तादाद में कवि मौजूद थे। श्रोता आये और चले गये लेकिन काव्य पाठ ख़त्म होने का नाम नहीं लेता था। कवि जिस अंधेरे से आते थे उसी में सहर्ष लौट भी जाते थे - शायद किसी और तरह से अपने अफ़सोस को कहने। गोया कविताएं गूंजती रहीं - कभी शिकायत बनकर ,कभी ग़ुस्सा कभी निरा अफ़साना बनकर, कभी निबंध तो कभी संस्मरण बनकर, या कि कभी पत्रकारिता के ठस विवरण ही बनकर। ख़ुदाया, वे कविताएं थीं कि चुड़ैलें जो रुलाई दबाती थीं और कहें भी जाती थीं कि जब तक सत्ता का ख़ून न पी लूंगी चैन न लूंगी।

आठ बजे

एक कवि ने आठ के आसपास वैसे लिखा जैसा नेरुदा ने लिखा था और फिर वैसा भी लिख कर दिखा दिया जैसा ब्रेख्ट ने लिखा था। महमूद दरवेश जैसा भी लिखा। बाकायदा। वह औरों की तरह तो लिख सका लेकिन अपनी तरह नहीं लिख सका। दूसरों के असाधारण की उसे ऐसी लत पड़ गई थी कि ख़ुद सा साधारण वह हो ही नहीं पाता था।

दस बजे

दस बारह पर शहर में बम गिरा तो एक लड़की डर कर कमरे में बैठे आदमी से लिपट गई। पुरुष ने

उसे देर तक चूमा और फिर वह उसे घर छोड़ने के लिये आया लेकिन स्त्री का घर बम गिरने से ढह गया था। इसी बीच एक और बम गिरा – वह लौटा तो देखा कि उसका अपना घर भी ढह चुका है। वे स्टेशन के लिए रवाना हुए तो तीसरा बम गिरा और स्टेशन भी तबाह हो गया। वे रेलगाड़ी की पटरियों के बग़ल में बैठकर रेलगाड़ी का इंतज़ार करने लगे। आख़िरकार उन्होंने पृथ्वी पर रेलगाड़ी को और आसमान से बम को आते हुए देखा।

बारह बजे

हमारा हम हुआ हम पर कि हम पर हार करते हो। कि कैसे कह सको क्यों कह सको हमवार करते हो। कि है तकलीफ़ तो तकलीफ़ का दरमां भी ढूंढ़ेंगे। वो कैसे हो कि सबकुछ ठीक करते तार करते हो। कि अपना भी तरीक़ा था कि अपना भी तरीक़ा हो। कि तुमसे गुफ़्तगू जो हो तो तुम तो वार करते हो। कि उन्ने जो कहा हां हां तो तुमने भी कहा हां हां। कि सच सच ये बताओ सच से कितना प्यार करते हो। कि हम अजमेर आते हैं कि हम शमशेर गाते हैं। कि कैसे हो सको आशिक़ कि क्या दीदार करते हो। कि कैसा बेठिकाना है ये किसका सा ज़माना है। कि डूबा जा रहा ये मैं जो दरिया पार करते हो। कि हंसने की वजह जो हो तो रोने का समां भी हो। कि कहते मार्क्स हो तो ज़र को फिर क्यों यार करते हो। कि ताक़त का जो खेला है कि तू कितना अकेला है। कि मर्दों की मुहिम में हमनफ़स को नार करते हो। कि अपना सा कहा कहते थे अपना सा सहा जो था। कि बारह बज गया तो नींद को गुफ़्तार करते हो।

दो बजे

ग्यारह बजे के आसपास जो नींद नहीं आयी थी वह दो बजे के आसपास भी नहीं आ रही थी। मेरे पास

नामों से भरी डायरी थी और बातचीत हो भी सकती थी लेकिन संवाद समीकरणों में बदल जाया करते थे और संलाप दुरभिसंधियों में और मिलने की इच्छाएं गिरोहों में। कविता तक में अध:पतन की आवाज़ें सुनाई नहीं देती थीं। सबसे अच्छे कविता संग्रह का नाम लिया जाना सबसे अच्छे संबंध का परिणाम था। ओ मेरे हमनवाज़, चूहों की दौड़ में जो जीतेगा वह चूहा ही होगा। लेकिन फोन के इस अधम समय में अंत:करण की यह आवाज़ तुम तक पहुंचे भी तो कैसे।

तीन बजे

तीन बजे भैरवी बजती है। बेवक़्त। बड़े ग़ुलाम अली खां की गूंजती है चिंता तीन बजे। तीन बजे गूंजती है विलंबित की मंद्रता जो यह गाती है कि वातावरण को धीरे धीरे ही सही बदला जा सकता है। तीन बजे खुलता है बाजूबंद। तीन बजे स्वतंत्र होती है देह। इतिहास के भोर में यह प्रागैतिहासिकता की विभोरता है। तीन बजे ख़ुद ब ख़ुद गिरती हैं दीवारें - बिहाग की थकावट के साथ उड़ते हैं विहग। एक पुकार उठती है जिसके जवाब में गूंजता है सूनापन। कला के ब्लैक एंड व्हाइट का ऋत्विक संताप फैला हुआ है - मैहर से लेकर दिल्ली तक। कमरे के आरपार फैलता है चिंताओं का सुख कि जैसे आत्महंता उम्मीदों का रेड कॉरिडोर।

चार बजे

भागती रेलगाड़ी में मुझे चार बजे ने जगाया। मुझे रात बीतने की प्रतीकात्मकता ने जगाया। मुझे चाय के मामूलीपन के रूपक ने जगाया। मुझे अवधी के एक वाक्य की अधीरता ने जगाया। जान पड़ता है कि भागती रेलगाड़ी अब वहीं रुकेगी जहां पृथ्वी ख़त्म होती है। तो ठीक है अब पृथ्वी के आख़िरी

स्टेशन पर ही रुका जाय। चला जाय पृथ्वी के अगले और आखिरी छोर पर या कि कविता के आखिरी कगार तक - पूरी पृथ्वी जैसी पूरी कविता से गुज़रते हुए। मेरे यह कहने का कुछ तो भरोसा कीजिये कि पृथ्वी का एक छोर मेरा पहले ही देखा हुआ है।

पांच बजे

किसी साहिर के स्याह और सफेद में कोई गुरुदत्त धुएं में चलता दिख रहा है बुदबुदाता हुआ कि ये दुनिया अगर मिल गई है तो क्या।

छह बजे

यह थाने में लगी चोट है या उम्मीद का उन्माद या यात्रा की पस्ती या दर्शन का निष्कर्ष या कि भूख है यह या कि कई दिनों से न आई नींद का नतीजा कि पता नहीं लगता कि ये जनवरी की सुबह का छह है या जून की शाम का या कि जुलाई की सुबह और शाम से परे का किसका यह छह है अप्रैल की अधीरता का या कि इतिहास की मई का या प्रागैतिहासिकता की दिसंबर का याकि अक्टूबर के बदलाव की बदहवासी का या कि भविष्यत् की सितंबर का कि जब चरम के चरम तक पहुंचने का चरम प्रकट होता है कि जैसे अरण्य में
उपनिषद
और
अंधेरे
में
ख़त
उजाड़
में
मीर
और
शहर

में
मदद
प्रेम
में
चूक
और
अपमान
में
बंदूक

यही है
इलहाम

मेरा
इस्लाम

देवी प्रसाद मिश्र की कई महत्वपूर्ण रचनाएं पिछले दिनों पहल में प्रकाशित। हिन्दी कविता को नई ज़मीन देने वालों में प्रमुख। देवी का मूल्यांकन शीघ्र पहल में प्रकाश्य।

अष्टभुजा शुक्ल

पुरोहित की गाय

(1)

लिपियों को लगभग फाड़ती
प्लुत में चिंघाड़ती
जैसे यकटोक्की शास्त्रीय टेक
अललाती गाय एक!

पाशविकता की हद तक पहुंची
एक आदिम उन्माद भरी पुकार—
अवरोह तक आते आते
करुणाद्र हो जाती बार बार

चिड़ियों की चहक, कुकुर झौं झौं, कांव कांव
बेटियों की विदाई के विलाप
माइक पर बजते अनूप जलोटा के भजन
गेहूं की मड़ाई करते थ्रेसरों की घरघराहट-
सब पर भारी पड़ने वाली
जान निकलने वाली सांसों के सहारे
समूचे स्नायु तंत्र से
अलला रही है एक पट्‌ठा गाय
पड़ोस में

दुनिया को बेपर्द करती
हर किसी का ध्यान खींच लेने वाली
सीवान के पार तक पहुंचने को बेताब
यह आवाज उनके कानों तक जाना चाहती है
जो लाठियां खा कर भी, तोड़ कर सारी घेरेबंदी
खाना पीना अधूरा छोड़ कर
दौड़ता हुआ चला आए उसके पास
गले की सारी सीमाएं लांघती
यह आवाज
सारी चोर आवाजों का जवाब बन जाना चाहती है।
कोई नकल करके चिढ़ाना चाहता है
तो आवाज दुगुनी हो जाती है

घूंघट और नकाब और ओढ़नियां तक गिर गई हैं
खिसिया कर रह गये हैं डाँट और डपट
लाठियों के पास दांत पीसने के अलावे दूसरा चारा नहीं
कथन की सारी मर्यादाएं भंग हो चुकी हैं
सूली पर चढ़ गई हैं सभ्यताएं
सच्चाइयां सी-सी कर रहीहैं
अपना नाम भूल चुकी हैं शालीनताएं
दिशाएं एक दूसरे का मुंह ताक रही हैं
आंख नहीं मिला पा रहे बाप और बेटे
जबकि अललाहट है
कि बढ़ती ही जा रही उसकी आवृत्ति
शराफत में आफत की तरह

आज बहुत अनमन है गाय
सब कुछ अटकुट लग रहा उसे
गर काट रही है हवा तक
खुरों से रौंद दे रही
बरसीम की हरी हरी घास
नथुनों से फू फू करके उड़ा दे रही है
भूसे, पिसान और बाल विकास परियोजना के पोषाहार
मत्थे से उलट दे रही
पानी की बाल्टी

गोड़ डाल दे रही हौदी में
अभद्रता की हद है!

हमेशा मूक और डरी-डरी
दिखने वाली गाय
अपनी परिचित परिभाषाओं को चिंदी चिंदी करती
अपनी ही कामनाओं से तड़क गई है
गाय गोया भड़क गई है

आकाश में गुम्मी जहाज के धुएं की
सफेद लम्बी लीक की तरह
समूचे वातावरण की पीठ पर
कई कई साट जैसी उछर गई है अललाहट
जब कामनाएं दहकती हैं
तो आग,
आवाज बन जाती है

वह पुकार, आवाज, अरे! वह अललाहट
लाग लपेट बिना भाषा का विस्फोट
मन्मथ का कर्कश पुरोवाक्
हर ढक्कन, हर परदे, हर बंदिश पर झन्नाटेदार तमाचा
रूढ़ समाज-समिति के कानों में पिघला सीसा
अनसुना किये जाने का सबसे सख्त एलान
चुप्पी का, हंगामा बनकर सड़कों तक टकराना
काम- गान को बिना हिचक के बीच सभा में गाना
सहसा दुनिया की सब पीतल का सोना बन जाना
गरम लहू का प्रत्यंचा पर चढ़ जाना-
अथवा देह चटाने की कोई उद्दाम पिपासा
हौले हौले सहलाए जाने की या प्रत्याशा
दो के मिलकर एकपने की आदिम चिर अभिलाषा
पल-विशेष में आधा हो जाने का अभाव
कुदरत की सुंदर चाहत का जैविक स्वभाव!
स्वाभाविकताएं?
पांवों में बिवाई की तरह टीसती हैं
कमर भर पानी में बूंद भर दाल की तरह चुरती हैं
खली की तरह झंकाती हैं,

आंखों के आगे महुए की मीठी चिनगारियों जैसी झरती हैं
बनने तक मिटती रहतीहैं
और गला फाड़ फाड़ कर कराहती हैं

बेहाल है गाय
सारे सदाबहार बन का बैनामा उसे नामंजूर है
फिक्र नहीं पगहे से गला कस जाने की
चिंता नहीं ठेकुर से घुटने टूट फूट जाने की
वह खोज रीह वह सुख
जो जनता केवल दु:ख
फिर भी उसी सुख के लिए
कम से कम
चौबीस घंटे का नशा तारी है
अललाहट जारी है।

(2)

शुरू शुरू में
जब वह आई थी पड़ोस में
तो सचमुच एक दानी बछिया ही थी
जिसके बारे में कहा जाता है
कि उसके दांत नहीं गिने जाते
तो उस उदन्ता
आयाता वत्सा के माथे पर
सिंदूरी रोली थी
केवल पूंछ की भगई लपेटे
जैसे कोई बाल व्याहता
ठिठकी, खड़ी अबोली थी
गले में जिसके
जनम - जनम के लिए पगहा पड़ गया था
यद्यपि कि आधा सड़ गया था
वैसे न तो कोई
कपड़ा पहन कर पैदा होता है
न पगहा
सब कुछ इहीं मिलता है

और सब कुछ इहीं छूटता है
चाहे सम्बन्ध हो या बन्धन!

लेकिन जब यदा-कदा
छुड़ा या तुड़ा लेती
या कोई उलाहना लेकर आती पड़ोस के पड़ोस से वह
तो उसे भी
वे ही गालियां नसीब होतीं
जो किसी सयानी गाय को मिलती थीं
खुशी या गुस्से में
उठे हुए झापड़ या धमकी या डंडे के डर से
आंखें मूंद कर सिकुड़ जाती
खिंची जाती पीछे की ओर
खूंटे से छूटने के उ़द्यम में
गले में और कसा जाता पगहा

बछिया- जो टीक कर दान में आई थी
किसी के पुण्य और पापों की भरपाई थी
मरने के बाद भी
किसी बजबजाते मझधार में
डूब कर मर जाने के डर
और पूंछ पकड़ कर पार हो जाने की आशा में
बछिया को ही मान कर गाय
किया जाता रहा गोदान
जम्बू दीप के भरत खण्ड में
आर्यावर्त देश के पुण्यप्रदेश में
रोज रोज
संकल्पी जाती,
दी जाती दान में
और टीकी जाती
मुक्ति के कर्मकाण्ड से होकर मुक्त
आ जाती पुरोहित की घारी में रोज रोज

माथे की जगह माथ है
खुरों की जगह खुर
थन की जगह कुछ किलनियां

शर्मगाह की जगह पूंछ
लेकिन सींगों की जगह
सिर्फ सींगों की जगह हैं
दाग दी गई हैं सींगें बचपन में ही
चिल्लाती है बछिया भी जब- तब
भूख और प्यास से
पुकारती है अपनी बिछुड़ी माँ को
डकरती है
बंधु-बांधवों के छूटे हुए ढोर देख
एक ही भाषा है उसकी किताब में
वही सबसे सटीक स्वर लिपि तब
जब ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता
कि देव नागरी लिपि में
कितनी हिन्दी साबुत बची है अब
जब कि
गर्व से कही जा रही हैं
बहुत-सी बातें ताल ठोंक कर
ज्यों ज्यों डूबती जाती है
किसी भाषा की आत्मा
उपराता जाता है फूल कर
धर्म का   शव
और मड़राने लगते हैं लुप्त हुए गिद्ध
बीरान कब्रगाहों में या
समाज के गंगा-तट पर
लेकिन जिसकी जननी कोई गाय हो
वह भाषा डूब कर कभी नहीं मर सकती
जन्मते ही तैरने लगती हैं उसकी संततियां
उसके शुक्र तक पार करा देते हैं लोगों को
बड़े से बड़ा भवसागर
हिन्दुस्तान में

हिन्दुस्तान एक भवसागर है
तो गाय पतवार
हिन्दुस्तान एक संविधान है
तो गाय शपथ

हिन्दुस्तान धर्मनिरपेक्ष है
तो गाय एक दंगा
हिन्दुस्तान सूखा है
तो गाय गोमुखी गंगा!

देश की गृह नीति, धर्म नीति, आश्रम नीति
अर्थनीति, राजनीति, बाल-गोपाल नीति,
विदुर -चाणक्य नीति
यहां तक कि स्वास्थ्य नीति-
इर्द गिर्द गायों के!
आधे से अधिक रोग
आधी प्रेत बाधा है
आधे में दवा दारू
झाड़-फूंक आधा है!

औचक ही छटपटाने लगती कोई गाय
फेंचकुर गिराने लगती
चियर जाता जबड़ा
अकस्मात फूल पर पेट हो जाता कोठार
आधे से ज़्यादे उठती नहीं गर्दन
गों गों करके रह जाता गला
दीदा से दीदा मिला पाते नहीं नाहर भी
मैदान छोड़ देते थे क्रूरतम कसाई

और तब?
और तब?
कुछ नहीं सूझता
मनियरा मरे सांप जैसा झूल जाता पगहा
काट दी जाती नथ जैसी नाथ
नोच दी जाती मंगलसूत्र सी गरांव
झटक दी जाती घूंघट सी मोहरी
गोदे सी बिखर जातीं गले की कौड़ियां
सहेज कर रख दिये जाते
सोलहो श्रृंगार भविष्य के लिए

फिर से शुरू होता नया अध्याय

खरीद कर आतीं नई नई गाएं
या चली आतीं दहेज के नेग में
अथवा आ जातीं गोदान के बहाने

दूध की नदियां बहतीं
नधे रहते बैल
छप्पर मुस्काती तो हंसते खपरैल
खाद हुई खेती हुई
वैतरणी की डोंगी,
आंवां भर ईंधन पजावा भर बर्तन
नदियों के कछार में पागुर के बताशे
बछड़े और बछियों के खिलंदड़ तमाशे
हरे भरे जीवन में आय ही आय हुई
गाय ही गाय
इहलोक से गोलोक तक!

(3)

ऐसी हो गाय
वैसी हो गाय
उस जैसी हो गाय
होती पंचायत
कि कैसी हो गाय?

डील डौल सुंदर हो
सही जगह कान पूंछ
बंधी हो तो हिले नहीं
आंखें करुणाभ हों
त्वचा भी स्पर्शशील
आंख के इशारों से बात समझ जाए
गाय हो कि जवार में बेजोड़
कि दिखे बछेटा जैसी
अथवा गुरुनितम्बा
कि पिछली खुरें जहां भी पडें
धरती पर बन जाएं दूध के बर्तन
और गाय की परछाई में हो बछड़े के लक्षण

थोड़ी बहुत कमी हो पर साक्षात गृहलक्ष्मी हो

सीधी हो, साधू हो खूब
रतिस्विनी खूब
पीनस्तनी खूब
पयस्विनी खूब
पूतस्विनी खूब
प्रजननस्विनी खूब!
अन्यथा ठहरी
तो ऊब ही ऊब!

जुग भर की ऊब लिए
ठेका लिए, सतू पिसान लिए
अनुभव के अपने अपने सामान लिए
खाची भर देह ज्ञान खुरपा भर तर्क
लैक्टोमीटर भर खोजी आंखों से
अपने मन मुताबिक नस्लों की गाएं
खोजते और चीन्हते थे मर्द

घर पर आ जाने पर
महिलाएं चूड़ियां खनकातीं
ड्योढ़ी से बहिरातीं
चोंच भर घूंघट के नीचे से
ढेढ़ आंखों से खूंटे की ओर ताकतीं
लगभग भेंट अकवार की उतावली में
धीरे धीरे पीठ और गर्दन सहलातीं
श्वास प्रश्वास से, लम्बे उच्छ्वास से
गहरे विश्वास से
शनै: शनै: टिक जाता कंधे पर कंधा
उधर गले की घंटी बजती इधर पांव के नूपुर!

अनुभव के आगार
दुधारू पशुओं की नस -नस के जानकार
कुढ़ते थे, बहुत बहुत चिढ़ते थे मर्द
जब-
देसी की देह विन्यास वाली कोई

गर्दन उठाकर डेढ़ मील ताकती अचानक
हरियाणा के कलेवर में प्रकट होने लगती
या कोई साहीवाल
जिसकी कि अनक में भी होती कोई झनक
सहलाने के बहाने हाथ धरते ही
सिकुड़ जाती डर के मारे
जैसे वे प्रेमी न होकर, हों हत्यारे
अथवा कोई फिजियन पेन्हाने के बावजूद
सन्न से खींच लेती दूध
कि छीमियां नोचने पर भी
नहीं भीगती बर्तनों की पेंदी
इसके उलट कोई जर्सी
बिना किसी भाड़े के ही
कामधेनु की अवतार बन
बरसने लगती धारासार

सारे पूर्वानुमानों की ऐसी तैसी करती
अचानक ही जर्सी बन जाती देसी
अनर्थ हो जाता तब
ठोंकने बजाने का अनुभव व्यर्थ हो जाता
प्रजातियों की सारी विशेषज्ञताएं
चाटने लगतीं धूल
शूल बन कर चुभने लगती अपनी ही ज्ञानात्मक भूल!

(4)

गोदान में मिली
पुरोहित की बछिया वह
बछिया नहीं रह गई है
पटसन की अधटूटी लड़ी वाले पगहे की जगह
प्लास्टिक का ऐंठा हुआ जिन्दा रंगीन शेषनाग है
जैसे महावृष्टि से क्यारी फूट पड़ती है
वैसे ही बिगड़ जाती है बछिया
महीने पखवारे में
बढ़ता ही जाता है पगहे का तनाव
पेरती रहती है निरंतर

खूंटे से दूरी बढ़ाने के लिए
गर्दन पर बढ़ते कसाव से बे फिक्र
बढ़ाती ही जाती है मुक्ति का वृत्त
कभी कभी दांतों से छोर लेती पगहा
तो खूंटे में पोत दिया जाता गोबर
पेडौंध कर किसी दिन
चमचमाते सुज्जे से
नाथ दी गई कुलच्छिनी गाय
यह क्या
कि गाय का गायपन ही गायब हो जाय?

पेरती रोज रोज
सफल हो पाती किन्तु
महीने पखवारे में
पगहा सरका लेती
छूटती कमान सी
गांव की गोंठती, टापती सीवान में
गुप्प से हलती तो लुप्प से निकलती
खिसिया कर रह जाती धरी धरी
हाथों की हरी हरी चरी
हाथ नहीं आती तो मच जाती हाय हाय
चुनौती बन जाती थी
समूचे गांव के लिए
अकेली गाय

गांव के अतिपिछड़ों, पिछड़ों के अगड़ों के
केसरी, अर्जुन, चन्दगी, जांबाज, ताकतवर रेखीले नौ जवान
ऊंच- नीच के, स्वधर्म- परधर्म, जाति -वर्ग के
भेद-भाव भूल कर
गाय को पकड़ने पीछे पड़ जाते थे
दूध के फेन की मूंछें बनाए
बच्चे भी बूढ़े मर्द बन जाते थे

दौड़ दौड़ कर, उछल कूद कर
ऊंच खाल नाघ कर
घड़ी दो घड़ी में हो जाती पस्त जब

घिर जाती डण्डों से, बड़े बड़े फंदों से
तब विजयी मुद्रा में
नवजवान लाते थे पकड़ कर
गुड़ के साथ कुछ तमगे भी पाते थे
छातियां फुलाते थे
खड़ी हो जाती समर्पण की मुद्रा में गाय
कितना अफनाती
किस मां बाप या भाई की शरण में जाती
जो छिटके थे देश और जहान में
जिनकी निगाह में
न अब वह किसी की बेटी थी
न किसी की बहन
गाय ने हताश होकर देखा और पाया
कि जिन सांडों ने
अंतिम संस्कार तक
अपना प्रेम अपने ही शवों के नीचे छिपाया
वे ही सबसे दोगले और दगाबाज थे

(5)

भरी पूरी बछिया नें
तोड़ दिये हैं दो दांत
रूप बदलते बदलते
बदल गई है उसकी आवाज
गीता और गंगा के साथ गिनी जाने वाली
वह गाय
आज पवित्रताओं की तिकड़ी से छिटक कर
कभी नीचे पहुंच कर 'चूंकि' का चिन्ह
तो कभी ऊपर पहुंच कर 'इसलिए' का प्रतीक बनाती
कारण कार्य सम्बन्ध में आ रही है
कारकों के चरम-सम्बोधन तक पहुंच कर
गाला फाड़ फाड़ कर अलला रही है

चुप्पा भी होती हैं कुछ गाएं, नि:शब्द
जिनके मन की मचलन, पीड़ा या हुड़कन
समझ नहीं पाते जिनका आसव अरिष्ट

वि.वि. विभागों के साइकॉलाजिस्ट, सेक्सालॉजिस्ट वरिष्ठ
जिनके अंतर्मन की वीणा के तार
बजा नहीं पाते
बड़े बड़े घरानों के संगीताचार्य
शारदा रो रो पड़ती
झुका लेते सिर   शेष

लेकिन यह गाय
दबा नहीं पाती अपनी आवाज
आवाज की ओर भागती
पगहे और डंडे की निगरानी में
चली जा रही वह स्वयंवरा
इधर-उधर देखती हुई—
देह बनाए, बोह लिए, पाटी पारे
चंदनचर्चित, मड़िया मारे
बदनज़र ताकते भैंसों को—
जोड़ें नितम्ब, बैठे सशंक
मेहरेचेहरे, चिक्कन रोएं,सिरफिरे नीलगायों को-
सगे बेदुला के वंशज हिनहिना रहे अश्वों को—
धृष्टों, धीरोद्धतों, अन्य पश्वों को—
सबको किनराती
जाती अपनी राह
खोजती हुई अपनी प्रजाति का नर पुंगव!
चाहेथोड़ा मुंहदूबर हो
या ककुद्मान
कुछ लम्बा,थोड़ा थुलथुल, छोटा, सविषाण
जो लाठियां खा कर भी, तोड़कर सारी घेरेबंदी
खाना पीना चरना अधूरा छोड़ कर
दौड़ता हुआ चला आए उसके पास
दो एक पहर तक
रोम रोम से साथ रहे
क्यों कि एक सत्र में
एक बार ही तो जागती है
वह आदिम प्यास
शरीर और शरीर
स्पर्श गुणे स्पर्श

एक द्वंद्व समास
जिसमें निहित है और...

पर नहीं मिला चपरहा कहीं
कोई मन माफिक उस दिन
बाप और बेटे ने
पहुंचा दिया उसे
पशुअस्पताल के गर्भाधान कटघरे में
कुछ सूई जैसी चुभी देह में
शांत हो गई फिर अनजानी
गाय न जानी
कोई मनसुख-तनसुख
हुई बेगानी

(6)

उचट जाती हर बार
वह अनादि उथली
या वह अनादि गहरी
कई कई बार में
सूई में फार में
नर से अभिसार में
गाय नहीं ठहरी

ठहरने या दूध देने में जैसे
रत्ती भर उसका विश्वास नहीं रह गया था अब
नियति ही किसी की जब
बन जाती है उसके लिए अभिशाप
तो नियति के वरदान पर भी
झुंझलाता वह
भरसक अवज्ञा करना चाहता है

ऊबे पुरोहित
सोच में डूबे डूबे सोचते-
कि खरीद लेता कोई ओन-पौन दाम पर ही
तो छूटता पिण्ड इस गाय से

लेकिन इस बदनाम गाय को
आफत की परकाला को
कोई सेंत मेंत भी हांक कर ले जाने को तैयार नहीं

कनपटी पर पड़े
डंडों की याद करके
सोचती शायद गाय भी सूनी आंखों से
कि छुट जाता यह खूंटा
तो भले नयी नदी का जहरीला पानी पी कर
सुलण्ठ जाती
जैसे कि कचरे की पालीथीन चबा कर
बहुत सी गाएं चली गईं गोलोक
या एक बार दान में ही दे दी जाती फिर
अथवा किसी कसाई के हाथों ही बिक जाती

बिक जाता है बहुत सस्ते में पसीना
खून बिक जाता है उससे कुछ मंहगे में
पानी बिक जाता है दूध के मोल
सरसों का तेल, डीजल और पेट्रोल
उससे भी मंहगे बिक जाते हैं

दुनिया का हर द्रव बिक जाता है
लेकिन आंख
आंसुओं की ऐसी दूकान है
जो सूनी रहती है अक्सर

आज फिर बढ़ रहा है पगहे का वृत्त
और बढ़ रहा है गर्दन पर कसाव
इक्कीस दिन बाद
फिर कुदरत की पारी है
अललाहट जारी है

अष्टभुजा शुक्ल पहल में दूसरी बार प्रकाशित। जाने माने और अलग राह के प्रतिष्ठित कवि। पद-कुपद पहचान बनाने वाला उनका कविता संग्रह है।